# स्त्री दृष्टि के साहित्यिक सरोकारों का मूल्यांकन

*अखिलेश कुमार,*
*शोध छात्र,*
*हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,*
*डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,*
*लखनऊ (उ0प्र0)*

*डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव,*
*अध्यक्ष एवं एसोसिएट प्रोफेसर,*
*हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,*
*डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,*
*लखनऊ (उ0प्र0)*

## शोध सारांश

*स्त्री दृष्टि का साहित्यिक सरोकार परंपराओं की टूटन एवं सामयिक समस्याओं के गर्भ से स्त्री अस्मिता का प्रश्न जन्म लेता है। स्त्री जीवन की समस्याओं को देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि स्त्रियों के जीवन में कुछ समस्याऐं ऐसी भी हैं जो स्त्री होने के कारण उत्पन्न हुयी है। यह समस्याएँ पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा स्त्री के प्रति की गयी ज्यादती के कारण पैदा हुयी है। यह सच है कि स्त्री के बारे में इतना प्रामाणिक विश्लेषण एक स्त्री ही दे सकती है।*

**KeyWords:** *सामयिक, स्त्रीवादी, मानसिक भौतिक सरोकार, अस्मिता, साहित्यिक परिवेश, पितृसत्तात्मक, उत्पीडन*

सच्चे स्त्रीवादी लेखन का उद्देश्य ऐसे वृहत्तर समाज की रचना से है जिसमें जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग, आयु के आधार पर स्त्रियों और पुरुषों के मध्य भेदभाव का कोई विचार न हो। इनका दर्शन वस्तुतः स्त्री की मुक्ति से सम्बंधित है। यह मुक्ति मानसिक–भौतिक एक साथ है। मानसिक मुक्ति का सम्बंध सांस्कृतिक मुक्ति से है, सामाजिक सोच में परिवर्तन से है। परम्पराओं की टूटन एवं सामयिक समस्याओं के गर्भ से स्त्री अस्मिता का प्रश्न जन्म लेता है। स्त्री को अपनी अस्मिता एवं गरिमा बनाए रखने के लिए तमाम संघर्ष करने पड़े। परम्पराओं की चौहद्दी तोड़ते समय आधुनिक नारियों ने नयी जीवन दृष्टि के साथ नयी समस्याओं से भी मुलाकात की है। स्त्री–जीवन की समस्याओं को देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि– ''स्त्रियों के जीवन में कुछ समस्याएँ ऐसी भी हैं जो उसके स्त्री होने के कारण उत्पन्न हुई है। स्त्री होने के कारण जो समस्याएँ हैं वह ज्यादा गंभीर व भयावह इसलिए हैं कि ये समस्याएँ पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा स्त्री के प्रति की गयी ज्यादती के कारण पैदा हुई है।''[1]

हिन्दी कथा साहित्य के इतिहास में सातवें दशक के बाद के कथाकारों की मुख्यधारा 'समकालीन कथा साहित्य' के नाम से अभिहित की गयी है। हिन्दी कथा साहित्य के समकालीन परिदृश्य को हम दो दृष्टियों से अवलोकन कर सकते हैं– एक तो समकालीन हिन्दी कथा साहित्य की गुणवत्ता से या कहे कि दशा–दिशा की दृष्टि से और दूसरे उसके परिवेश की दृष्टि से। यह उल्लेखनीय तथ्य है कि हिन्दी कथा साहित्य का संसार या क्षितिज बहुत विस्तारित है। एक ओर देश के भीतर हिन्दी और हिन्दीतर प्रदेशों में लिखे जाने वाले कथा साहित्य, दूसरी ओर देश के बाहर प्रवासी और भारतवंशी लेखकों द्वारा लिखा जाने वाले कथा साहित्य का परिदृश्य

विद्यमान है। इसके बावजूद भी हम समकालीन कथा साहित्य में स्त्री एवं पुरुष लेखकों के साहित्य का भी अलग ढंग से मूल्यांकन कर सकते है। स्त्री दृष्टि के संदर्भ में विभिन्न साहित्यिक ग्रंथों व समकालीन साहित्यिक रचनाओं में दिखायी देता है। विभिन्न कालों के साहित्य में तत्कालीन नारी स्थिति का स्पष्ट वर्णन दिखायी देता है।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता साहित्य के द्वारा ही संभव है। आज जबकि महिला सशक्तीकरण का दौर चल रहा है, उसमें भाषा वा उनके कार्य की महत्ता को केन्द्रीय भूमिका में रखकर देखा जाता है, जिसे स्त्रियों ने अपनी भूमिका के संदर्भ में सदा से जोड़े रखा है। साहित्य से सशक्त स्त्री मुखर रूप से शास्त्रार्थ करती है और समाज में सशक्तीकरण का प्रतीक रूप प्रदर्शित करती है। महिलाओं ने अपनी वैचारिक क्राान्ति से समाज में अपने लिए एक स्थान नियत किया। यद्यपि यह स्थान कई वर्षों की तपस्या से प्राप्त हुआ है, जिसके माध्यम से स्त्री की व्यथा–कथा को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्ति मिली और जिसने स्त्री मुक्ति का ताना–बाना बुना। समकालनीन हिन्दी कथा साहित्य में कई पुरुष व महिला लेखिकाओं ने विविध आयामों को छुआ है और नारी के उत्थान में सार्थक बदलाव लाकर उसकी शक्ति बनी है। मेहरून्निसा परवेज के शब्दों में– ''अपनी हर लड़ाई मैंने लिखकर जीती। मेरे कागज मोर्चा होते और सैनिक बने..... ।''[2]

सातवें दशक के मध्य से भारतीय जनमानस में प्रतीक्षा का भाव समाप्त हो गया, इसके स्थान पर मोहभंग और सामाजिक परिवर्तन के लिए आतुरता–अधीरता का भाव पैदा हुआ। समकालीन महिला एवं पुरुष कथाकारों ने राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्वार्थ प्रेरित ताकतों के विरुद्ध लड़ने हेतु अपनी कहानियों एवं उपन्यासों को प्रगतिशीलता से आच्छादित किया। सभी ने अपनी तर्कपूर्ण बात रखने का साहस दिखाया। यही कारण है कि उनके कथा साहित्य में घोर विद्रोह के दहकते शोषित, पीड़ित, जन समुदाय के ज्वालामुखी को भूखण्ड के भीतरी जलन को अभिव्यक्ति मिली। व्यापक मोहभंग और व्यवस्था का शिकार हुआ आम आदमी के अन्दर की पीड़ा, तनाव, विवशता, अबोधता, सहिष्णुता अकेलेपन, हताशा, निराशा, घर–परिवार, खीझ और गुस्से को उसके कटु अनुभवों को समग्रता में उद्घाटित समकालीन कथा साहित्य में किया जाता रहा है। आज के दौर की समकालीन कथा साहित्य वही नहीं है जो नवें–आठवें दशक का कथा साहित्य है। सामाजिक व राजनीतिक परिवर्तनों– आजादी के बाद भारतीय संविधान का लागू होना, उदारीकरण, भूमण्डलीकरण, निजीकरण, पूँजीकरण नवउपविशेवाद की आर्थिक नीतियों का लागू होना, दिसम्बर 1992 में पारित संशोधन के 73वें संशोधन के बाद ग्रामीण स्त्रियों को तैंतीस प्रतिशत आरक्षण मिलना, 'हिन्दू कोड बिल' का पारित होना–से भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति में जबर्दस्त परिवर्तन आया जिसका प्रभाव कथा साहित्य में भी दिखायी देता है। जिसको स्त्री ने अपने लेखन से साहित्यिक, सामाजिक एवं राजनीतिक व रचनात्मक विषयों से जुड़े कई सवालों को समाज के साम ने रखा तथा आलोचनात्मक पक्ष से पुरुष वर्ग को झकझोरा है। महादेवी वर्मा लिखती हैं कि– ''भारतीय नारी भी जिस दिन अपने सम्पूर्ण प्राण प्रवेग से जाग सके उस दिन उसकी गति रोकना किसी के लिए संभव नहीं।''[3]

समकालीन कथा साहित्य वर्तमान सामाजिक परिवेश से जूझते व्यक्ति के दुखों का साहित्य है वह जिन्दगी के सही अर्थों में जीने का पर्याय बन गया और बहुत ही बेडौल टुकड़ों में बँटी आदमी की जिन्दगी को जोड़ने का प्रयास करता है। यथा समकालीन कथा साहित्य सुनिश्चित सामाजिक बदलाव के लिए जनसंघर्ष के प्रतिपूर्ण समर्पित है। इस दौर की महिला कथाकार मुक्ति का मार्ग तलाशती आधुनिक

स्त्री–जीवन के विविध पहलुओं को परत दर परत उकेरती हैं। चाहे वह स्त्री की 'आर्थिक स्वायत्तता' का प्रश्न हो, या 'यौन–सुचिता' का प्रश्न हो या 'स्त्री के अन्तः सम्बंधों' का प्रश्न हो, अथवा उनकी स्वतंत्र सत्ता एवं अस्तित्व का प्रश्न हो, चाहे 'पुरुष के हवस का शिकार होती स्त्री का' प्रश्न हो, या आधुनिक स्त्री का प्रतिक्रियात्मक आक्रोश हो। महिला लेखिकाओं ने सर्जनात्मक स्तर पर 'पुरुष–समाज' की स्त्री–विरोधी मूल्य–मर्यादाओं, मिथकों, आदर्शों एवं विधि–निषेधों आदि की कड़ी आलोचना करते हुए उन्हें तोड़ने के लिए अपने कथा साहित्य में अपने मन तथा विचार के अनुकूल 'स्त्री–पात्रों' को गढ़ा है और लेखन में उन्हें प्रस्तुत करने का पूरा प्रयास किया है।

नारी विषयक विचारों के आलोक में प्रभा खेतान का विचार उल्लेखनीय हो जाता है– ''यह सच है कि स्त्री के बारे में इतना प्रामाणिक विश्लेषण एक स्त्री ही दे सकती है। बहुधा कोई पाठिका जब अपने बारे में पुरुष के विचार और भावनाएँ पढ़ती है तब उसे लेखक की नीयत पर कहीं संदेह नहीं होता। 'अन्ना करैनिना' पढ़ते हुए या शरत्चन्द्र का 'शेष प्रश्न' पढ़ते हुए हम बिल्कुल भूल जाते हैं कि इस स्त्री–चरित्र को पुरुष गढ़ रहा है और यदि लेखक याद भी आता है तो श्रद्धा से मस्तक नत हो जाता है। पर यह बात मन में आती है कि यदि अन्ना का चरित्र किसी स्त्री ने लिखा होता, तो क्या वह अन्ना को रेल के नीचे कटकर मरने देती ? यदि देवदास की पारो को स्त्री ने गढ़ा होता, तो क्या यूँ घुट–घुट कर मरती ? इसमें से किसी महान लेखक पर मेरा कोई आक्षेप नहीं, पर कवि होने की कल्पना कभी–कभी दूसरी ओर भी मुड़ती है।''[4]

समकालीन कथा साहित्य की प्रवृत्तियों को समझने में मधुरेश का यह कथन महत्वपूर्ण माना जाता है– ''समकालीन कहानी जहाँ एक ओर राजनीति की इकहरी और यांत्रिक निष्कर्षों वाली सोच से मुक्त हुई है, वहीं वह समाज व राष्ट्र के संदर्भों में अधिक गंभीर और बेबाक सवालों के सामने खड़े होने की कोशिश कर रही है। एक ओर यदि वह स्थितियों की संवेदन शून्यता की गहरी पड़ताल में प्रवृत्त है तो दूसरी ओर वही वह सामंती अन्तर्विरोधों से लेकर स्त्री उत्पीड़न और धार्मिक उन्माद की आँधी में साधारण आदमी की नियति को भी परिभाषित करना चाहती हैं। आज की कहानी की मूल चिन्ता किसी न किसी स्तर पर मनुष्य की मुक्ति से जुड़ी है। इसमें एक ओर जहाँ भारतीय समाज में हाशिये पर जीवन जी रहे लोगों की अभावों और विविध रूपों में उत्पीड़न से मुक्ति शामिल है, वहीं पुरुष वर्चस्व वाले समाज में स्त्री की अपनी अस्मिता और मुक्ति का सवाल भी उतना महत्वपूर्ण है।''[5]

समकालीन नारीवादी चिन्तक आशारानी व्होरा लिखती हैं कि– ''सृष्टि रचना में स्त्री का योगदान पुरुष के समान योगदान से कहीं ज्यादा है, वह मानव की जन्मदात्री है, फिर संसार के विकास में उसका योगदान क्यों नगण्य रहा ? आज की समानता की भागीदारी केवल विधान के कागजों पर है, व्यवहार में इस आधी आबादी का स्थान अल्पसंख्यकों के समान ही है। ऐसा क्यों ? इसी वजह से सवाल उठते हैं कि क्या वह अल्पसंख्यक है ? क्या वह दूसरे दर्जे की इन्सान है ? क्या वह बुद्धि या अन्य मानवीय गुणों में पुरुषों से हीन है ? क्या वह पुरुष–पति का मन बहलाव करने की वस्तु है ? उसका अपना निजी अस्तित्व अपनी निजी पहचान कहाँ है ? निजी तौर पर विश्वहित में उसकी कोई अन्य भूमिका क्यों नहीं रही ? ये बुनियादी सवाल आज विकसित, अविकसित, विकासशील सभी देशों में समान रूप से उठाए जा रहे हैं।''[6]

स्त्रियों का कहना है कि– ''पुरुषों का उनके प्रति दुहरा दृष्टिकोण मान्य नहीं। वे कमर के ऊपर स्त्री को एक आँख से देखते है और

कमर के नीचे स्त्री को दूसरी आँख से; और आँखों का एक दोष यदि वे दूर न करें तो ऐसे आँखों को फोड़ दिया जाए। ऐसा नहीं है कि सारे पुरुष लेखक एक से ही हैं।''[7]

समकालीन कथा लेखिकाओं– मन्नू भण्डारी, रजनी पनिकर, विजय चौहान, ऊषा प्रियंवदा, सोमावीरा, सुनीता, ममता कालिया, मृदुला गर्ग, शशिप्रभा शास्त्री, दीप्ति खण्डेलवाल, राजी सेठ, मालती जोशी, शांता सिन्हा, मेहरुन्निसा परवेज, कृष्णा अग्निहोत्री, कुंकुम जोशी, निर्मला ठाकुर, ऊषा किरण खान, सूर्यबाला, क्रांति त्रिवेदी, मंजुल भगत, मृणाल पाण्डेय, बिन्दु सिन्हा, निरूपमा सेवती, ज्योत्ससना मिलन, सुकीर्ति गुप्ता, देवकी अग्रवाल, ऋता शुक्ल, मणिका मोहिनी, कुसुम अंसल, अचला नागर, सुधा अरोड़ा, इन्दिरा मित्तल, नासिरा शर्मा, चन्द्रकांता, पद्मांशा, मोना गुलाटी, शुभा वर्मा, निर्मला वाजपेयी, चित्रा मुद्गल, गीतांजलि श्री, कमल कुमार, मैत्रेयी पुष्पा, अर्चना वर्मा, अलका सरावगी, लवलीन, जया जादवानी, उर्मिला शिरीष, अरुणा सीलेश आदि ने नारी अंतर्मन को झांककर उसके अछूते रहस्यों को उद्घाटित किया, साथ ही नये विषय भी उठाए है। सभी कथा लेखिकाएं नए भावबोध के साथ कहानी और उपन्यास को एक सांस्कारित स्वर देने में भी प्रयत्नशील हैं।

आदि कथाकारों ने अपने कहानियों एवं उपन्यासों में आर्थिक समस्या के समाधान हेतु नारी को स्वतंत्र अस्मिता, अस्तित्व, पहचान, सम्मान, गौरव अधिकार एवं प्यार आदि देकर नारी विकास हेतु नई दिशा एवं दशा प्रदान करने में एक सक्षम एवं गौरवमयी पक्ष व पहल है। संदर्भित इक्कीसवीं सदी के कहानियों एवं उपन्यासों में समय, संवेदना एवं समाज की प्रस्तुति समसामयिक युगीन परिस्थितियों की मांग के अनुकूल ही उसे अभिव्यक्ति का प्रयास उनकी रचनाओं में दिखायी देता है। इस दौर के कथा साहित्य स्थापित परम्परागत व्यवस्था के दरवाजे पर प्रतिरोध की दस्तक देते हैं और विकास के अभियान में अवरोध बने हुए समाज के पारम्परिक ढाँचे को तोड़ने की हिमायत करते हैं इसलिए कि विकास का रास्ता प्रशस्त हो सके। ताकि आज की नारी अपनी वांछित दुनिया पा सके।

समकालीन साहित्य में नारियों की प्रबल एवं प्रखर उपस्थिति रही है। आज नारियों ने साहित्य के क्षेत्र में सक्रिय भागीदारी निभाते हुए जीवन और समय के जटिल एवं गूढ़ सवालों के समाधान में अपना चिंतन प्रस्तुत किया है। उनके चिंतन और विचार ने समाज में अपनी पहचान व वाणी और छाप छोड़ी है। सामाजिकता के अनेक विषयों को नारियों ने साहित्य से जोड़ा और अपनी अस्मिता और अस्तित्व का बोध कराया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि समकालीन महिला कथाकारों ने अपने परिवेश से प्रभावित होकर अपनी कहानियों एवं उपन्यासों में उन विचारों को प्रतिस्थापित करना शुरू किया है जो उनको उन्नति की ओर अग्रसर करते हैं। उनके कथा साहित्य में वे विचार ही प्रबलता के साथ अभिव्यक्ति पा रहे हैं जो उन्हें विकास के रास्ते पर ले जाने वाले है। आर्थिक स्वावलंबन न होने के कारण समाज में स्त्रियों को वेश्या, कॉलगर्ल, चरित्रहीन, रखैल, भ्रष्टाचारी, दासी, अनुचरी आदि मजबूरन बनाना पड़ता है। यही देह व्यापार नारी के स्वाभिमान और सम्मान को गिरा देता है।

## सन्दर्भ


1. समकालीन लेखन और आधुनिक संवेदना, कल्पना वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण–2010, पृ0 260–261
2. नई सहस्राब्दी का स्त्री विमर्श, संपा0 डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2010, पृ0 102

3. शृंखला की कड़िया, महादेवी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, (पेपर बैक) तीसरा संस्करण–2015, पृ0 9 (अपनी बात)
4. स्त्री विमर्श : विविध पहलू, संपा0 कल्पना वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण–2011, पृ0 216–17
5. हिन्दी कहानी का विकास, मधुरेश, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, षष्ट संस्करण–2011, पृ0 181
6. औरत : कल, आज और कल, आशारानी व्होरा, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, संस्करण–2014, पृ0 184
7. हिन्दी साहित्य में नारी विमर्श, डॉ0 संजय सिंह, अनुजा श्रीवास्तव, स्नेह प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण–2009, पृष्ठ I (भूमिका से)